International Journal of Hindi Research
www.hindijournal.com
ISSN: 2455-2232
Received: 08-03-2026, Accepted: 08-04-2026, Published: 23-04-2026
Volume 12, Issue 2, 2026, Page No. 86-88

दलित साहित्य और आदिवासी साहित्य का अंतःसंबंध : एक आलोचनात्मक अध्ययन

सोमनाथ[1], डॉ गीतू[2]
[1] शोधार्थी, हिन्दी विभाग, गुरु जम्भेश्वर विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी विश्वविद्यालय, हिसार, हरियाणा, भारत
[2] सहायक प्रोफेसर, हिन्दी विभाग, गुरु जम्भेश्वर विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी विश्वविद्यालय, हिसार, हरियाणा, भारत

सारांश
साहित्य की दुनिया में दलित और आदिवासी साहित्य की उपस्थिति स्त्री लेखन के बाद मानी जाती है। कई बार भ्रमवश और कई बार सायास दलित और आदिवासी साहित्य को एक ही मान लिया जाता है। इस प्रसंग में स्पष्टता के लिए दलित साहित्य और आदिवासी साहित्य के अंतःसंबंधों पर बात करना जरूरी है। भारतीय साहित्य की समृद्ध परंपरा में दलित और आदिवासी साहित्य दो ऐसी धाराएँ हैं, जिन्होंने लंबे समय तक हाशिए पर रखे गए समुदायों की आवाज़ को केंद्र में स्थापित किया है। दलित साहित्य और आदिवासी साहित्य कुछ कुछ एक दूसरे से भिन्न हो सकता है, लेकिन पूर्ण रूप से इन दोनों विधाओं को अलग– थलग नहीं दिखा सकते। इस लिए इन दोनों साहित्य विधाओं के अन्त: संबंधों का यहां वर्णन करने का प्रयास किया जाएगा। ये दोनों साहित्यिक प्रवृत्तियाँ सामाजिक असमानता, शोषण, सांस्कृतिक वर्चस्व और ऐतिहासिक अन्याय के विरुद्ध सशक्त प्रतिरोध प्रस्तुत करती हैं। दलित साहित्य जहाँ जाति–आधारित उत्पीड़न के अनुभवों को अभिव्यक्त करता है, वहीं आदिवासी साहित्य भूमि, प्रकृति और सांस्कृतिक अस्मिता के प्रश्नों को केंद्र में रखता है। प्रस्तुत शोध–पत्र में दोनों साहित्यिक धाराओं के अंतःसंबंध, उनकी समानताओं, भिन्नताओं, वैचारिक आधारों तथा समकालीन प्रासंगिकता का गहन विश्लेषण किया गया है।

मूल शब्दः दलित साहित्य, समृद्ध, प्रासंगिकता, उत्पीड़ित व्यक्ति, भ्रमवश

दलित साहित्य और आदिवासी साहित्य के अंतःसंबंधों को समझने के लिए सबसे पहले हमें इनकी अवधारणा पर बात करनी होगी, यानी यह जानना होगा कि दलित साहित्य क्या है? और आदिवासी साहित्य क्या?

दलित साहित्य के स्वरूप को समझने के लिए सबसे पहले यह जान लेना अति आवश्यक होगा कि दलित कौन हैं? 'दलित' का सामान्य अर्थ है–शोषित, दमित, उत्पीड़ित व्यक्ति, भले ही वह किसी भी जाति, वर्ण, धर्म, वर्ग, लिंग, राष्ट्रीयता से संबंधित क्यों न हो, यही इसका शाब्दिक अर्थ भी है।

सर्वहारा एवं अनुसूचित जनजाति को हटा देने पर दलित शब्द भारतीय समाज व्यवस्था में सबसे निचले पायदान पर बैठी शूद्र वर्ण की विभिन्न जातियों, जो अस्पृश्य मानी जाती थीं, के लोगों का द्योतक सिद्ध होता है। कानून की भाषा में इसे ही अनुसूचित जाति कहा जाता है। यही इसका संदर्भित अर्थ है (जाहिर है अर्थ शब्द में नहीं, संदर्भ में होता है)। दलित समाजशास्त्री डॉ. भीमराव अम्बेडकर के अनुसार "दलित का अर्थ केवल एक जाति नहीं, बल्कि 'दबाया हुआ', 'शोषित', 'रौंदा हुआ', 'मसला हुआ' या 'टूटा हुआ' (ठतवामद) व्यक्ति है। यह शब्द ऐतिहासिक रूप से अस्पृश्यता और सामाजिक–आर्थिक भेदभाव का सामना करने वाले समुदायों की मुक्ति, स्वाभिमान, और जाति व्यवस्था के खिलाफ संघर्ष व चेतना का प्रतीक है।" हम भी दलित शब्द का प्रयोग आगे इसी अर्थ में करेंगे।

दलित साहित्य में तीन तरह के सहित्य होने का दावा किया जाता है–

1. दलित साहित्यकारों के द्वारा दलितों के सम्बन्ध में लिखा गया साहित्य।
2. दलितों से संबंधित साहित्य जो दलितों के सम्बन्ध में लिखा गया हो।
3. दलित साहित्यकारों द्वारा रचा गया साहित्य।

दलितों द्वारा दलितों के बारे में लिखा गया साहित्य ही दलित साहित्य है। चूंकि दलित ही दलित जीवन और उसकी समस्याओं के भोक्ता होते हैं, इसलिए वे दलितों के बारे में जो कुछ लिखेंगे, वही दलित साहित्य होगा। अधिकांश दलित साहित्यकार और चिंतक इसी तर्क को मानते हैं। यहाँ भोक्ता होने का विशेष महत्त्व है। दलित साहित्य के अंतर्गत गैर दलितों की रचनाओं को शामिल करने का इसलिए विरोध किया जाता है कि भले ही संबंधित रचनाएँ दलित जीवन का चित्रण करती हैं, भले ही उनमें दलित जीवन की समस्याओं को उठाया गया है, लेकिन गैर दलित साहित्यकारों ने दलित जीवन के कड़वे अनुभवों को खुद नहीं भोगा है इसलिए उनकी अनुभूति प्रामाणिक नहीं है। वे दलितों के बारे में जो भी लिखेंगे, वह सहानुभूतिजन्य होगा। इसके विपरीत भोक्ता होने की वजह से दलित साहित्यकारों का लेखन स्वानुभूतिजन्य व इसलिए प्रामाणिक होगा।

भारतीय समाज व्यवस्था में अस्पृश्य समझे जाने के कारण बहुत पहले से दलितों को पढ़ने–लिखने का अधिकार नहीं रहा। उनका शोषण उत्पीड़न होता रहा, "जब दलितों को पढ़ने–लिखने की सुविधा ही नहीं थी, तो वे साहित्य कहाँ से लिखते इसलिए दलित साहित्य के रूप में अधिकांशतः वही साहित्य मिलता है, जो दलितों के बारे में गैर दलितों ने लिखा था।" इस आधार पर सवर्ण यानी गैर दलित आलोचकों का एक बड़ा वर्ग इस बात पर जोर देता है कि दलितों की समस्याओं पर अब तक जो लिखा गया है, वही दलित साहित्य है। रचनाकार चाहे किसी भी जाति, वर्ण का क्यों न हो। अगर यह दलित जीवन की सच्चाई को मार्मिकता के साथ चित्रित करने में सफल हुआ है तो उसका संबंधित साहित्य दलित साहित्य है। इस मत से अधिकांश दलित विचारक सहमत नहीं है। उन्हें गैर–दलितों की रचनाओं को दलित साहित्य में शामिल करने से आपत्ति है। डा. तुलसीराम के अनुसार "गैर दलितों द्वारा लिखा गया दलित साहित्य किसी अभिनेता द्वारा शेर की सफलतापूर्वक आवाज निकालने जैसा है, जबकि दलित साहित्यकार स्वयं शेर भी है और उसकी आवाज भी।" अधिकांश दलित चिंतक गैर–दलित सहित्यकारों द्वारा लिखित को दलित साहित्य मानने से इनकार करते हैं, क्योंकि उनके अनुसार यह सुधार और उद्धार की दृष्टि से लिखा गया है। उसमें न वैसा आक्रोश है, न व्यवस्था में आमूल–चूल की वैसी माँग जो दलित आंदोलन की अनिवार्य शर्त है। इससे यह निष्कर्ष निकलकर आता है कि दलितों द्वारा लिखा गया साहित्य ही दलित साहित्य है। दलितों द्वारा लिखा जाने के कारण उसमें

विद्रोह का तीखा स्वर होगा और इसीलिए वह गैर दलितों द्वारा लिखे गए साहित्य से एकदम पृथक होगा। ओमप्रकाश वाल्मीकि जी के अनुसार, "दलित साहित्य "जन साहित्य" (मास लिटरेचर) है, जो 'एक्शन' यानी संघर्ष से उपजा है। वे अनुभूति की प्रामाणिकता को सर्वोच्च मानते हैं और मानते हैं कि केवल दलित ही अपनी पीड़ा को सही ढंग से अभिव्यक्त कर सकता है।"
ओमप्रकाश वाल्मीकि की कृति "जूठन" दलित जीवन की त्रासदी और संघर्ष का सशक्त उदाहरण है।
दलित साहित्य समाज के उस यथार्थ को सामने लाता है, जिसे मुख्यधारा का साहित्य लंबे समय तक अनदेखा करता रहा है।
निष्कर्ष यह निकल कर आता है कि 'हिन्दी का दलित साहित्य हिन्दी साहित्य के एक खाप्त दौर–अस्सी और नब्बे के दशक में उभरा एक साहित्यिक आंदोलन है, जिसमें दलित लेखक–कवि आत्म सजगता के साथ आगे आए और अपने को एक अलग साहित्यिक धारा के रूप में मनवाने का संघर्ष चलाया।
अपनी रचनाओं में उन्होंने अपनी जाति के साथ होने वाले भेदभावों और जुल्मों को दिखाया।' दलित साहित्य को दलित जाति से हिंदी में 'आदिवासी' पद का प्रयोग देश के मूल–निवासियों और उनके वंशजों के लिए होता है, जिन्हें संवैधानिक भाषा में अनुसूचित जनजाति कहा जाता है। आदिवासियों के संदर्भ में हम संयुक्त राष्ट्र के इस वक्तव्य से सहमत हो सकते हैं, "आदिवासी लोग ऐतिहासिक रूप से विकसित और जैविक रूप से स्वतः आगे बढ़ने वाली इकाइयाँ हैं, जो कुछ खास सांस्कृतिक विशेषताओं द्वारा लक्षित होती हैं और जो मुख्यधारा समाज और उसकी संस्थाओं द्वारा कई तरह से दबाई जाती हैं और जो लंबे समय से अपनी विशिष्टताओं और अस्तित्व के लिए बुनियादी संसाधनों के संरक्षण व उनकी बढ़ोतरी के संघर्ष में लगे रहे हैं। इस मायने में वे कारगरता और चरित्र, दोनों ही अर्थों में देशज लोगों के समान हैं।"आदिवासी साहित्य में मुख्य तौर पर देखा गया है कि आदिवासी जल, जंगल और जमीन के लिए अपनी लड़ाई लड़ते आ रहे है । इसमें शुरू से ही अपनी लेखनी से बदलाव लाने का प्रयास कर रहे गंगा सहाय मीणा इस संदर्भ में लिखते है कि – "यह उस परिवर्तनकामी चेतना का रचनात्मक हस्तक्षेप है जो देश के मूल निवासियों के वंशजों के प्रति किसी भी प्रकार के भेदभाव का पुरजोर विरोध करती है तथा उनके जल, जंगल, जमीन और जीवन को बचाने के हक में उनके 'आत्म निर्णय' के अधिकार के साथ खड़ी होती है।" 'आदिवासी' के कई समानार्थी शब्द मिलते हैं, जैसे–इंडिजिनस (देशज), एबॉर्जिनल (देशज), प्रिमिटिव (आदिम), नेटिव (मूल निवासी), बैंड (आदि समूह, कवीला), नैव (भोला–भाला), सेवेज (जंगली) आदि, लेकिन इनमें से हर शब्द का विशिष्ट संदर्भ और अर्थ है।
हिंदी में 'आदिवासी' पद का प्रयोग ही सबसे अधिक किया जाता है, क्योंकि आदिवासी शब्द उस चेतना का भी प्रतीक है, जिसकी मदद से उन्होंने अपने दुःख–दर्दों को समझा है और जो उन्हें मुक्ति की राह में आगे बढ़ा रही है। आदिवासी पद में एक आंदोलनधर्मिता है, जो जनजाति या अन्य किसी पद में नहीं है। आदिवासी साहित्य की अवधारणा पर हम बात कर चुके हैं, इसलिए यहाँ उसे दोहराएँगे नहीं। दलित और आदिवासी साहित्य की अवधारणा पर बात करते हुए यह बात सामने आती है कि दोनों साहित्यिक आंदोलन मुक्तिकामी हैं और लगभग एक ही समय में पैदा हुए हैं, लेकिन दोनों बुनियादी रूप से भिन्न हैं। आगे के बिंदु इस भिन्नता को स्पष्ट करने में मददगार साबित होंगे। महाश्वेता देवी ने अपनी रचनाओं में आदिवासी जीवन के शोषण और संघर्ष को अत्यंत प्रभावशाली ढंग से प्रस्तुत किया है। भारतीय समाज की संरचना बहुस्तरीय और जटिल रही है, जिसमें जाति, वर्ग, भाषा, संस्कृति और भूगोल के आधार पर विभाजन स्पष्ट रूप से दिखाई देते हैं। इस सामाजिक संरचना में कुछ समुदायों को विशेषाधिकार प्राप्त हुए, जबकि अन्य समुदायों को शोषण, उपेक्षा और बहिष्कार का सामना करना पड़ा। दलित और आदिवासी समुदाय ऐसे ही दो वर्ग हैं, जिन्होंने ऐतिहासिक रूप से उत्पीड़न और हाशियाकरण का अनुभव किया है। इन समुदायों के जीवनानुभवों, संघर्षों और अस्मिता की अभिव्यक्ति के रूप में दलित और आदिवासी साहित्य का उदय हुआ। यह साहित्य केवल रचनात्मक अभिव्यक्ति नहीं है, बल्कि यह सामाजिक परिवर्तन का एक सशक्त उपकरण भी है।
यह समाज की असमानताओं को उजागर करता है और न्याय, समानता तथा मानवाधिकारों की स्थापना की दिशा में मार्ग प्रशस्त करता है। दलित साहित्य उस साहित्य को कहा जाता है, जो दलित समुदाय के जीवन, उनके अनुभवों, पीड़ा, संघर्ष और सामाजिक अन्याय के विरुद्ध प्रतिरोध को अभिव्यक्त करता है। इस साहित्य का विकास मुख्यतः 20वीं शताब्दी में हुआ, जब दलित चेतना का उदय हुआ और सामाजिक आंदोलनों ने गति पकड़ी। भीमराव आंबेडकर के विचारों ने दलित साहित्य को वैचारिक आधार प्रदान किया। बहुत प्रसिद्ध दलित राजनैतिज्ञ रहे मान्यवर साहब काशीराम जी। जिनके ऊपर लिखी गई पुस्तके भी दलित साहित्य का हिस्सा है। अशोक दास द्वारा संपादित पुस्तक 'करिश्माई काशीराम' है जिसमें एक पंक्ति है, काशीराम जी कहते है "सबसे अधिक दबा–कुचला अंग जिन्हें हम अनुसूचित जाति/जनजाति कहते हैं या बहुत से क्षेत्र में इन्हें हम (हरिजन/आदिवासी) भी कहते हैं।"

निष्कर्ष

दलित साहित्य अनुभव की प्रामाणिकता पर जोर देता है, जिसमें कड़वे सामाजिक यथार्थ और सदियों के दमन का आक्रोश व्यक्त होता है। इसी के साथ साथ आदिवासी साहित्य भारतीय समाज और साहित्य के लिए अत्यंत महत्वपूर्ण है। यह न केवल एक समुदाय की अभिव्यक्ति है, बल्कि एक वैकल्पिक जीवन–दृष्टि भी प्रस्तुत करता है, जो प्रकृति, समानता और सामूहिकता पर आधारित है। आवश्यक है कि इस साहित्य को अधिकाधिक अध्ययन और सम्मान मिले, ताकि भारतीय साहित्य की विविधता और समृद्धि को सही मायनों में समझा जा सके।
दलित और आदिवासी साहित्य भारतीय साहित्य की दो महत्वपूर्ण और सशक्त धाराएँ हैं, जो हाशिए के समुदायों की आवाज़ को केंद्र में लाती हैं। इन दोनों के बीच गहरा अंतःसंबंध है, जो साझा अनुभवों, संघर्षों और अस्मिता की खोज पर आधारित है। हालाँकि इनके बीच कुछ महत्वपूर्ण भिन्नताएँ भी हैं, जो उनके विशिष्ट सामाजिक और सांस्कृतिक संदर्भों से उत्पन्न होती हैं। अतः इन दोनों साहित्यिक धाराओं का तुलनात्मक अध्ययन भारतीय साहित्य को अधिक समग्र, समावेशी और लोकतांत्रिक दृष्टि प्रदान करता है। दोनों साहित्य अपनी पहचान को स्थापित करने का प्रयास करते हैं।
यह प्रश्न दोनों में केंद्रीय है
"हम कौन हैं और हमारी पहचान क्या है?"
दोनों साहित्यिक धाराओं में प्रतिरोध का स्वर अत्यंत प्रबल है।

- दलित साहित्य → ब्राह्मणवादी व्यवस्था के विरुद्ध
- आदिवासी साहित्य → पूंजीवादी और विकासवादी नीतियों के विरुद्ध

संदर्भ

1. मीणा, गांगा सहाय, आतिवासी चिंतन की भूमिका, अनन्य प्रकाशन, पंचशील गार्डन, नवीन शाहदरा, दिल्ली, 2025, पृष्ठ सां– 94
2. दास, अशोक, करिश्माई काशीराम, दास पब्लिकेशन, पांचवां संस्करण जनवरी, 2023, पृष्ठ सा 69
3. डॉ. श्यामसुंदर दास, साहित्यलोचन, सस्ता साहित्य मण्डल प्रकाशन, नई दिल्ली, 2018

4. अम्बेडकर,भीम राव, जाति का विनाश, प्रकाशन 1936,
5. तिवारी, भोला नाथ,भाषा विज्ञान,किताब महल (इलाहाबाद) प्रकाशन, संशोधित प्रकाशन,2019–2022,
6. गुप्ता, रमणिका (स.), युद्धरत आम आदमी, जुलाई–सितंबर 2007,
7. रेणु,फणीश्वर, मैला आंचल,राजकमल प्रकाशन,1954,
8. वाल्मीकि, ओमप्रकाश, जूठन (आत्मकथा), राधाकृष्ण प्रकाशन,1997